जून १९९९ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

धारण करे तो धर्म

धर्म वह जो जीवन में उतरे

(जी-टीवी पर चौवालीस कड़ियों में प्रसारित पूज्य गुरुदेव श्री सत्यनारायण गोयन्का के प्रवचनों की नौवीं कड़ी)

धर्म जीवन में उतरे तो ही धर्म है। आचरण में उतरे तो ही धर्म है अन्यथा पोथियों का धर्म, ग्रंथों का धर्म, ऐसे प्रवचनों का धर्म, मंदिरों का धर्म, मस्जिदों का धर्म, गिरिजाघरों का धर्म, चैत्यों का धर्म। धर्म यदि जीवन में नहीं उतर रहा है तो हमारे किस काम का? किसी के भी किस काम का? जीवन में उतरे। इसीलिए कहा गया – **सब्बपापस्स अकरणं** –सारे पापकर्मों से बचो। पापकर्मों से बचोगे तो धर्म जीवन में उतरेगा। पापकर्मों में लगोगे, दुष्कर्मों में लगोगे, जीवन दुराचरण ही दुराचरण से भरा रहेगा और इस भ्रम में रहोगे कि हम धार्मिक हैं, हम धर्मवान हैं तो धोखा ही धोखा, धोखा ही धोखा। और **कुसलस्स उपसम्पदा** – कुशल कर्म करें। कुशल कर्म तब होंगे जब हमारे चित्त की वृत्तियां कुशल होंगी। जब हमारे चित्त पर हमारी मल्कियत होगी। कुशल चित्त हो, उस पर हमारी मल्कियत हो तो सारे कर्म अपने आप कुशल होते चले जायेंगे। आचरण सदाचरण होता चला जायगा। कर्म सत्कर्म होते चले जायेंगे। बस, आ गया धर्म। धर्म और क्या होता है!

पाप से बचें, पुण्य में लगें। बड़ी सीधी-सी बात है। किसी एक संप्रदाय की बात नहीं। किसी एक वर्ण की, किसी एक गोत्र की, किसी एक जाति की, किसी एक समाज की, किसी एक जमात की बात नहीं है। अरे, सब की बात है। मनुष्य मात्र की बात है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। गृहस्थ अपने परिवार के सदस्यों के साथ रहता है। समाज के सदस्यों के साथ रहता है। कोई गृहस्थ नहीं है, गृहत्यागी है तो भी संसार से, समाज से दूर नहीं भाग सकता।समाज से संपर्क रहता ही है। यानी हर व्यक्ति का समष्टि के साथ संपर्क रहेगा ही। समाज के साथ संपर्क रहेगा ही। तो हर व्यक्ति की यह जिम्मेदारी हो जाती है, उसका यह उत्तरदायित्व हो जाता है कि वह कोई ऐसा काम नहीं करे, जिससे अन्य प्राणियों की सुख-शांति भंग होती हो। जिससे अन्य प्राणियों का अहित होता हो। जिससे अन्य प्राणियों का अमंगल होता हो। कोई ऐसा काम वाणी से भी नहीं करे, शरीर से भी नहीं करे तो बस, पाप से विरत हो गये। और ऐसे ही काम करे जिनसे अन्य प्राणियों की सुख-शांति का संवर्धन होता हो, जिनसे अन्य प्राणियों का हित होता हो, जिनसे अन्य प्राणियों का मंगल होता हो, कल्याण होता हो तो धर्म ही धर्म है।

कोई व्यक्ति धार्मिक है कि अधार्मिक, पापी है कि पुण्यशाली; इसी मापदंड से मापा जायगा कि वह कर्म कैसे कर रहा है? बड़ा कठिन होता है मन को कुशल चित्तवृत्तियों से भरना, अच्छी चित्तवृत्तियों से भरना, उसे अपने वश में करना और फिर सदाचरण का जीवन जीना। दुराचरण से दूर रहना बड़ा कठिन होता है। पर कल्याण तो इसी में है और प्रयत्न करे तो कठिन भी नहीं। प्रयत्न ही नहीं करता इससे लगता है कि बहुत कठिन है। बेचारा दुर्बल मानव इससे छुटकारा पाने के लिए कोई-न-कोई रास्ता ढूंढता है कि इस राज-मार्ग से चलना न पड़े। इस राज-मार्ग पर चलने में कठिनाई है, अतः कोई छोटी-मोटी गली ढूंढ लें, भले वह अंधी गली है। अटक जायगा आगे जाकर के, लेकिन कोई रास्ता ढूंढता है कि यह सब न करना पड़े फिर भी धार्मिक कहलाये। तो कोई इस कर्मकांड में लगता है, कोई उस कर्मकांड में लगता है और लोगों को धोखा देता है कि देख, मैं यह कर्मकांड कर रहा हूं ना! तो धर्मवान हूं। मैंने यह कर्मकांड किया, यह कर्मकांड किया, इसलिए मैं धर्मवान हूं। अपने आपको ही धोखा देता है। मैं बड़ा धार्मिक हूं, क्योंकि मैंने यह कर्मकांड कर दिया, मैंने वह कर्मकांड कर दिया। अलग-अलग समाज के लोग, अलग-अलग समूह के लोग, अलग-अलग जमात के लोग, अपनी-अपनी परंपरा के कर्मकांड करते रहते हैं।

मैं मंदिर में गया और वहां जाकर मैंने कोई कर्मकांड पूरा कर दिया। कोई मस्जिद में गया और वहां जाकर के उसने एक कर्मकांड पूरा कर दिया। कोई गिरिजाघर में गया और वहां जाकर के अपना एक कर्मकांड पूरा कर दिया। कोई एक चैत्य पर गया और वहां जाकर के अपना एक कर्मकांड पूरा कर दिया। कोई गुरुद्वारे में गया, वहां जाकर के कोई कर्मकांड पूरा कर दिया। कोई उपाश्रय में गया, वहां जाकर के कोई कर्मकांड पूरा कर दिया। कर्मकांड तो पूरा कर दिया लेकिन आचरण कैसा है? इस ओर ध्यान नहीं देते। आचरण तो दुराचरण ही दुराचरण है। शरीर और वाणी से जो काम करता है वह अन्य लोगों को सुख-शांति पहुँचाने वाला नहीं, बल्कि उनकी सुख-शांति भंग करने वाला है। अन्य लोगों का मंगल करने वाला नहीं, अमंगल करने वाला कर्म है। फिर भी अपने आप को अजीब धोखे में रखता है –'मैं बड़ा धार्मिक, मैं बड़ा धार्मिक'। ऐसा व्यक्ति सही माने में धार्मिक कैसे बन सकता है? उसके जीवन में सही धर्म कैसे उतर सकता है? क्योंकि वह इसी बात से बड़ा संतुष्ट रहता है कि मैंने यह कर्मकांड पूरा कर दिया, मैंने वह कर्मकांड पूरा कर दिया।

कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो समझते हैं कि भाई, इन बाहरी-बाहरी कर्मकांडों में क्या पड़ा है? इससे आदमी धार्मिक नहीं बनता। इस बाहरी-बाहरी वेश-भूषा में क्या पड़ा है? इससे भी आदमी धार्मिक नहीं बनता। वे अपने लिए कोई और उलझन तैयार कर लेते हैं – 'मैं अमुक दार्शनिक मान्यता को कट्टरता के साथ मानने वाला', और अलग-अलग संप्रदायों की अलग-अलग दार्शनिक मान्यताएं। अरे, इन संप्रदायों का निर्माण ही किसी न किसी दार्शनिक मान्यता को लेकर होता है। इनका पोषण ही किसी न किसी दार्शनिक मान्यता को लेकर होता है। इनका अस्तित्व ही किसी न किसी दार्शनिक मान्यता को लेकर होता है। तो बस अपने को बड़ा धर्मवान समझेगा। अमुक संप्रदाय की परंपरा ऐसी है कि वह इस दार्शनिक मान्यता को मानती है और उस संप्रदाय का

व्यक्ति समझता है कि देख, मैं इस दार्शनिक मान्यता को मानने वाला और बड़ी कट्टरता से मानने वाला, मेरे जैसा धार्मिक कौन होगा! अरे, इन लोगों को देखो! कितने अधार्मिक हैं। यह जो इतनी सम्यक दार्शनिक मान्यता है, इसी को नहीं मानता। हर संप्रदाय वाला अपनी दार्शनिक मान्यता को सम्यक दर्शन कहेगा, दूसरे की मान्यता को मिथ्या दर्शन कहेगा। समझता ही नहीं, क्या सम्यक होता है? समझता ही नहीं, दर्शन क्या होता है? उलझ गया बेचारा, क्या करे? उलझन ही उलझन। उलझन ही उलझन। सोच कर देखता ही नहीं कि अमुक दार्शनिक मान्यता को मान लेने से क्या मेरे कर्म सुधरे? क्या मेरे चित्त के विकार निकले? क्या मेरा चित्त निर्मल हुआ? और क्या वह निर्मल चित्त आचरण में उतरने लगा? ऐसा जांच करके देखता रहे तो कोई दोष नहीं। लेकिन किसी भी दार्शनिक मान्यता के प्रति इतना गहरा अंधापन होता है, इतनी गहरी आसक्ति होती है कि धर्म का सार छूट जाता है। कर्म चाहे जैसे करें, वह दार्शनिक मान्यता ही प्रमुख है।

एक व्यक्ति यह मानता है कि हमारे शरीर के भीतर एक अलग-थलग आत्मा का निवास है। उसके मन में यही होता है कि जो लोग अपने भीतर आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार कर रहे हैं वे बड़े धार्मिक हैं। अरे, जो आत्मा के अस्तित्व को ही नहीं स्वीकार करते, वे तो बड़े अधार्मिक हैं, बड़े अधार्मिक हैं।

ठीक इसी प्रकार एक संप्रदाय की परंपरा इस बात को नहीं मानती कि हमारे भीतर कोई अलग-थलग आत्मा है। उसकी परंपरा कहती है कि कोई आत्मा है ही नहीं। उस परंपरा का आदमी इसी नशे में चूर कि मेरे जैसा धार्मिक कौन होगा? मैं अपने भीतर किसी काल्पनिक आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार ही नहीं करता। इनको देखो, कैसे गये-गुजरे हैं, जो आत्मा है ही नहीं, उसे स्वीकार किये जा रहे हैं। सोच कर नहीं देखता कि आत्मा को न मान करके तेरे चित्त के विकारों को दूर करने में कोई सहायता मिली? इस आत्मा को न मान करके तेरे आचरण में कोई परिवर्तन आया? आचरण जांचने के लिए यदि कोई सोचता रहे, जानता रहे और देखता रहे कि जीवन बदल रहा है, अच्छाई की ओर जा रहा है, मेरे कर्म बदल रहे हैं अच्छाई की ओर जा रहे हैं, तो बड़ी अच्छी बात। लेकिन ऐसा नहीं करते ना?

और आत्मा को मानने वाले भी, किसी एक संप्रदाय के लोग ऐसी आत्मा को मानते हैं कि जितना बड़ा शरीर उतनी बड़ी आत्मा। जो इसे मानता है वह धार्मिक व्यक्ति है। जो ऐसा नहीं मानता वह क्या धार्मिक होगा? उसने समझा ही नहीं, आत्मा क्या होती है? अरे आत्मा तो जितना बड़ा शरीर उतनी बड़ी होती है। दूसरी परंपरा कहेगी कि नहीं, नहीं, नहीं। आत्मा तो अंगुष्ठ-प्रमाण। जितना बड़ा अंगूठा उतनी बड़ी आत्मा। तो फिर दूसरे लड़ेंगे अरे, तेरा अंगूठा तो इतना बड़ा, अरे, चींटी की आत्मा इतनी बड़ी कैसे होगी रे? फिर झगड़ेंगे – नहीं, नहीं, नहीं, यह तिल के जितनी बड़ी। अरे, इतने नन्हें-नन्हें जीव होते हैं, अदृश्य-से, दिखते भी नहीं आंखों से, तो तिल भी उनके लिए बड़ा, तो कहें बाल के नोक जितनी बड़ी। फिर लड़े जा रहे हैं। बाबा, बाल के नोक के जितनी बड़ी है कि तिल के जितनी बड़ी है कि अंगूठे के जितनी बड़ी है कि सारे शरीर जितनी बड़ी है; क्या मिला रे? इस मान लेने या न मान लेने से मिला क्या? सोचना बंद कर दिया न! धर्म के नाम पर बुद्धि का इस्तेमाल न हो जाय कहीं। मजहब में अकल को दखल न हो जाय।

अरे, धर्म की इतनी सीधी-सीधी व्याख्या, तेरे जीवन में धर्म उतर रहा है कि नहीं? तेरे चित्त में निर्मलता आ रही है कि नहीं? तेरे चित्त से राग दूर हो रहा है कि नहीं? द्वेष दूर हो रहा है कि नहीं? मोह दूर हो रहा है कि नहीं? यह एक मापदंड जो सब पर लागू होता है, यही तो धर्म का मापदंड है। इसे भुला दिया तो झगड़े ही झगड़े, भिन्नता ही भिन्नता।

धर्म भिन्न नहीं होता, धर्म अभिन्न होता है। ये सारी दार्शनिक मान्यताएं विभिन्न होती हैं तो इनके बल पर सारे संप्रदाय विभिन्न होते हैं। धर्म है तो अभिन्न होगा। यह दार्शनिक मान्यता कि वह दार्शनिक मान्यता, यह कर्मकांड कि वह कर्मकांड, यह वेश-भूषा कि वह वेश-भूषा, तेरा कर्म कैसा है? **"सब्बपापस्स अकरणं"**, सारे पापकर्मों से तू विरत रहता है कि नहीं? **"कुसलस्स उपसंपदा"**, कुशलकर्मों की, पुण्यमय कर्मों की संपदा संचित करता है कि नहीं? बस, एक ही मापदंड, जो सब पर लागू होता है। अपने को हिंदू कहे, बौद्ध कहे, जैन कहे, ईसाई कहे, मुस्लिम कहे, कुछ फर्क नहीं पड़ता। अपने को भारतीय कहे, बर्मी कहे, अमरीकी कहे, रूसी कहे, कुछ फर्क नहीं पड़ता। ब्राह्मण कहे, क्षत्रिय कहे, वैश्य कहे, शूद्र कहे, कुछ फर्क नहीं पड़ता। कर्म कैसे हैं? धर्म तो कर्म से ही जांचा जाता है। यह बात जिस आदमी के जितनी जल्दी समझ में आ जाती है वह अन्य कर्मकांड करते हुए भी, अन्य इस या उस प्रकार की दार्शनिक मान्यताओं को मानते हुए भी, इस या उस प्रकार की वेश-भूषा धारण करते हुए भी, हमेशा इस बात के लिए सतर्क रहेगा कि मेरा कर्म कैसा है? मेरा कर्म कैसा है? कहीं मेरा कर्म दूषित तो नहीं? कहीं मेरे किसी भी कर्म की वजह से अन्य प्राणियों को हानि तो नहीं हो रही? मैं वाणी से झूठ बोल करके अन्य प्राणियों को ठगने का काम तो नहीं कर रहा? मैं वाणी से कटु बात बोल करके, कड़वी बात बोल करके, चुगली की बात बोल करके, परनिंदा की बात बोल करके अन्य लोगों का जी तो नहीं दुखा रहा? उन्हें दुखी तो नहीं बना रहा? सजग रहेगा, अपनी वाणी के कर्मों के प्रति खूब सजग रहेगा।

ऐसे ही अपने शरीर के कर्मों के प्रति भी सजग रहेगा। मैं अपने शरीर से किसी अन्य प्राणी के प्राण हरण तो नहीं कर रहा! मैं कोई ऐसी वस्तु जो मेरी नहीं है, उसे चुरा तो नहीं रहा! उसे छीन तो नहीं रहा! उसे हथिया तो नहीं रहा! मैं कहीं अपने शरीर से व्यभिचार तो नहीं कर रहा! मैं नशे-पते के कारण अपने मन का मालिक न रह करके शरीर से औरों की सुख-शांति भंग तो नहीं कर रहा?

खूब समझेगा तो आगे बढ़ जायगा। अपने भीतर सच्चाई को देखने के रास्ते पर आगे बढ़ता चला जायगा। तब एक बात और बहुत अच्छी तरह समझ में आने लगेगी कि यह जो मैं वाणी या शरीर से दुष्कर्म करके लोगों की सुख-शांति भंग नहीं करता तो ऐसा

नहीं है कि मैं लोगों पर बड़ा उपकार कर रहा हूं, लोगों पर बड़ा अहसान कर रहा हूं। अंतर्मुखी होगा, काया के भीतर जाकर के सच्चाई देखने लगेगा तो बात समझ में आयेगी, कि अरे, मैं औरों का नहीं, अपना उपकार कर रहा हूं। मैं औरों पर अहसान नहीं कर रहा, अपने आप पर अहसान कर रहा हूं। क्योंकि जब अंतर्मुखी हो जायगा, जब काया में स्थित हो जायगा यानी कायस्थ हो जायगा – **"निच्चं कायगता सति",** बार-बार अपने भीतर क्या हो रहा है, इसको देखता रहेगा तो देखेगा कि मेरे भीतर अगर विकार जाग रहे हैं तो ऊपर-ऊपर से भले लगता हो कि यह काम अच्छा कर रहा हूं पर वस्तुतः अच्छा नहीं है। दुष्कर्म ही होगा, क्योंकि मेरा मन विकारों से भरा हुआ है और विकारों के आधार पर जो काम किया जाय वह गलत ही होगा, सही हो नहीं सकता। तो यों कायस्थ रहेगा। काया के भीतर अपना मन रखते हुए बाहर के काम करेगा। बार-बार अपने मन को जांचता रहेगा, मेरा चित्त कैसा है? मेरा चित्त कैसा है? इसलिए **"सचित्त परियोदपनं",** अपने चित्त को परिपूर्ण रूप से निर्मल करता रहेगा। निर्मल करने का प्रयास करता रहेगा।

जब कुशल चित्त से कोई काम करेगा तो मानस के ऊपर-ऊपर वाले चित्त को दूषित चित्तवृत्तियों से अलग करने की कोशिश करेगा, कुशल चित्तवृत्तियां धारण करने की कोशिश करेगा और तब जो काम करेगा वह अच्छा होगा। लेकिन उससे भी पूरी बात नहीं बनी। अंतर्मन की गहराइयों में जायगा तो देखेगा, अरे, गांठें ही गांठें बांध रखी हैं। गांठें ही गांठें बांध रखी हैं। कैसा गांठ-गंठीला, कितना व्याकुल, कितना बेचैन, विकार ही विकार, विकार ही विकार। राग की अग्नि जल रही है, द्वेष की अग्नि जल रही है, मोह की अग्नि जल रही है। अरे, जब मुझे ही सुख-शांति नहीं मिल रही, तो मैं सही माने में औरों को सुख-शांति कैसे दूंगा? यह बात अपने भीतर देखने की आदत होने पर खूब समझ में आयेगी।

बाहर की दुनिया में रहते हुए हम बाहर की दुनिया से विमुख नहीं हो जायेंगे। एक बार इस विद्या को सीखने के लिए जब तपोभूमि में आता है तो बाहर की दुनिया से अपने आपको काट करके कि कैसे कायस्थ बनूं! काया के भीतर क्या हो रहा है? इस साढ़े तीन हाथ की काया के भीतर क्या हो रहा है? इसका अनुसंधान करना सीखूं! इस अंतरिक्ष की खोज करना सीखूं! यह विद्या सीखता है इसलिए बाहर की दुनिया से अपने आपको काटता है। लेकिन भाई, फिर तो बाहर जाकर के रहना है न दुनिया के साथ, परिवार के साथ, समाज के साथ, लोगों के साथ, तो दोनों काम करेगा। भीतर से बार-बार अपने आपका निरीक्षण करता रहेगा और बाहर अपने कामों का भी निरीक्षण करता रहेगा कि कैसा काम कर रहा हूं? मेरे किसी काम से किसी की सुख-शांति तो भंग नहीं होती? मेरे किसी काम से किसी को पीड़ा तो नहीं पहुँचती? अरे, जो कर रहा हूं, उससे लोक कल्याण हो रहा है ना? लोगों का भला हो रहा है ना? और समझते जाता है अरे, मेरा भला भी तो इसी में समाया हुआ है। मैं जब कभी किसी अन्य की सुख-शांति भंग करता हूं तो पहले मेरी सुख-शांति का हनन होता है। पहले मैं अपनी सुख-शांति की हत्या करता हूं, बाद में औरों की सुख-शांति की हत्या करूंगा। तो बुद्ध की वाणी बहुत स्पष्ट अनुभूति पर उतरती है –

"पुब्बे हनति अत्तानं, पच्छा हनति सो परे।"

औरों की सुख-शांति का हनन तो पीछे करेगा पहले अपनी सुख-शांति का हनन करने लगा। वाणी से दुष्कर्म तो पीछे करेगा, शरीर से दुष्कर्म तो पीछे करेगा, पहले मन में कोई विकार जगायेगा और विकार जगाते ही बड़ा दुखियारा, बड़ा अशांत, बड़ा बेचैन हो जायगा। अपने आपको दंडित करने लगा, अपने आपको व्याकुल बनाने लगा, उसके बाद औरों को व्याकुल बनायेगा। स्वानुभूति से समझा तो धर्म समझ में आने लगा।

ऐसा हुआ तो सचमुच धर्म जीवन में उतरना शुरू हो जायगा। जीवन में नहीं उतरता है तो धर्म के नाम पर धोखा ही धोखा। औरों को धोखा नहीं दे रहे हैं अपने आपको धोखा दे रहे हैं। औरों के साथ प्रवंचना नहीं कर रहे हैं, अपने आपके प्रति प्रवंचना कर रहे हैं। अरे, इस धोखे के बाहर निकलें। धर्म के शुद्ध स्वरूप को समझें और उसे जीवन के आचरण में उतारें तो मंगल ही मंगल। तो कल्याण ही कल्याण। अपना भी मंगल, औरों का भी मंगल। अपना भी कल्याण औरों का भी कल्याण। जो धर्म के शुद्ध स्वरूप को समझकर धारण करता है उसका खूब मंगल ही मंगल, कल्याण ही कल्याण। उसकी स्वस्ति ही स्वस्ति। उसकी मुक्ति ही मुक्ति।

चीन में विपश्यना का प्रथम शिविर

'पीपल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना' के हेबेई प्रांत के एक पुरातन 'विहार' में विपश्यना का पहला शिविर अप्रल १९९९ में सफलतापूर्वक संपन्न हुआ। यह स्थान बीजिंग से लगभग ३ घंटे की दूरी पर है। इस शिविर में कुल ११७ लोगों ने भाग लिया, जिसमें ५६ पुरुष और ६१ महिलाएं थीं। इसमें हांगकांग, ताईवान और अमरीकी साधकों ने धर्मसेवा का काम किया।

शिविर की सफलता का मुख्य आधार था विहार के प्रबंधकों की समुचित व्यवस्था और साधकों की ध्यान सीखने की उत्कट अभिलाषा व गहन परिश्रम। सबने शिविर-नियमों का गंभीरतापूर्वक पालन किया और भविष्य में पुनः शिविर करने व लगवाने के लिए प्रतिवद्ध दिखाई दिये। कइयों ने पुनः शिविर लगने पर अपनी धर्मसेवाएं देने का भी प्रस्ताव किया।

पूज्य गुरुजी ने चीन में धर्म की सफलता पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा, "चीन विश्व का वह पुरातन देश है जहां भगवान बुद्ध की शिक्षा सदियों से प्रवाहमान है। इससे वहां के लोगों का प्रभूत मंगल होगा! विश्व के सारे प्राणी सुखी हों!"

अंधजनों के एक और शिविर की सफलता

कोल्हापुर के निसर्गोपचार केंद्र में २ से १३ अप्रल तक २७ पुरुष व ६ महिला अंधजनों का शिविर सफलतापूर्वक संपन्न हुआ। इससे पूर्व मुंबई, अहमदाबाद और काठमांडू में इनके लिए पांच शिविर लग चुके हैं। इनकी मुख्य कठिनाई धम्मकक्ष, भोजनालय, निवासस्थान आदि स्थानों पर जाने-आने की ही होती है। पर एक बार इन स्थानों का भूगोल मन में बैठ जाय तो सारा काम सहजरूप

से बिना सहारे के ये स्वयं करने लगते हैं। स्पर्शादि के व्यवधान के अतिरिक्त जन्मांध लोगों के लिए रूप, रंगादि की बातें बहुत सावधानीपूर्वक शब्दचित्रों से बच्चों की तरह समझानी पड़ती हैं। पर अतिरिक्त संवेदन-क्षमता, अंतर्मुखी रहने की स्वाभाविक रुचि के कारण जब इन्हें अनित्यबोध के आधार पर जागरूकता और समता को पुष्ट करने वाली विपश्यना साधना का अभ्यास कराया जाता है तब ये बहुत भावविभोर हो उठते हैं। कुंठित हीनभावना पिघलने पर मंगल मैत्री के अभ्यास के बाद इनका व्यक्तित्व खिल उठता है। इनकी प्रसन्नता और कृतज्ञता देख कर हम सब को बड़ी प्रेरणा मिलती है।

देश में 'राष्ट्रीय अंधकल्याण संघ' (द्रव्ब्द) व अन्य सेवाभावी संस्थाएं इनके कल्याण के लिए प्रयत्नशील हैं। परंतु सद्धर्म के द्वारा इन्हें प्रज्ञाचक्षु मिलेंगे तो सही माने में इनका कल्याण हो जायगा।

'धम्मवटी', नाशिक जेल में सतिपट्ठान शिविर

नाशिक कारागार में पिछले तीन वर्षों में कुल अड़तीस विपश्यना शिविर लग चुके हैं, जिनमें २२०० बंदीजनों (१२०० नए और १००० पुराने साधकों) को धर्मलाभ मिला है। कई शिविर किये पुराने साधकों की इच्छा थी कि उनके लिए सतिपट्ठान शिविर लगाया जाय। अतः २४ अप्रल से २ मई ९९ तक पहला सतिपट्ठान शिविर लगा, जिसमें २३ साधकों को सम्मिलित किया गया। सब ने बहुत श्रद्धा और गंभीरतापूर्वक धर्म को समझने और अभ्यास करने का प्रयत्न किया। मंगल मैत्री के दिन वातावरण इतना मृदु और कृतज्ञतापूर्ण था कि शब्दों में उसका वर्णन करना कठिन है।

'धम्मचक्क' विपश्यना केंद्र, सारनाथ का अभ्युदय

सारनाथ वह पवित्र स्थान है जहां भगवान गौतम बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात पहली बार उन पंचवर्गीय संन्यासियों को धर्मोपदेश दिया था जो कि तापसकाल में उनके सहयोगी साथी रहे थे। यहीं ऋषिपत्तन मृगदाय में एक-एक करके पांचों को अरहंत अवस्था प्राप्त हुई और इसी के साथ भगवान बुद्ध की शिक्षा में ऐतिहासिक 'धर्मचक्र-प्रवर्तन' का नया अध्याय जुड़ गया।

धर्म के द्वितीय शासनकाल में अब इस क्षेत्र में पुनः धर्मोत्थान का समय आया है और स्थानीय लोगों ने विपश्यना केंद्र के लिए बीस लाख रु. में एक भूखंड खरीदने का निश्चय किया है। आवश्यक औपचारिकताओं के बाद निर्माणकार्य आरंभ होगा। इस महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक केंद्र-स्थापना के पुण्य में जो साधक साधिकाएं भागीदार बनना चाहें, निम्न पते पर संपर्क कर सकते हैं: –

श्री राय दिनेश चंद्रा, चंद्रा टावर्स (प्रा.) लि., एस-२ ६३८-ए, राय कृष्णचंद्र नगर, वाराणसी कैंट २२१००२. फोनः ३८२३४४, नि. ३८२३४१. फैक्सः ०५४२-३८२३५१.